तुकाराम महाराज का आरम्भिक जीवन और उनकी साधना

स्वामी वासुदेवानन्द द्वारा एक व्याख्या

भारत के परमपूज्य सन्त-कवियों में से एक हैं, तुकाराम महाराज जो सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महाराष्ट्र राज्य में रहा करते थे। अपने अल्प जीवनकाल में तुकाराम महाराज ने भगवान की उपस्थिति के अनुभव को जनसाधारण के लिए सुलभ बनाया। और जो काव्य व अभंग वे अपने पीछे छोड़ गए, उन्होंने कई सदियों से, अशिक्षित गाँववासियों और शिक्षित विद्वानों, दोनों को ही समानरूप से प्रेरित व प्रोत्साहित किया है।

सिद्धयोग पथ पर हम तुकाराम महाराज को उनके द्वारा रचित उन अभंगों द्वारा जानते हैं जो गुरुमाई चिद्विलासानन्द व बाबा मुक्तानन्द ने सत्संगों व शक्तिपात ध्यान-शिविरों में गाए हैं। ये अभंग उन पूर्ण साक्षात्कारी गुरु के अनुभवों व सिखावनियों को व्यक्त करते हैं जो अपने शब्दों द्वारा सदियों से भगवान की सेवा करते आए हैं; ये महान गुरु सभी के हृदय में भगवान के दर्शन करते हैं।

महाराष्ट्र की लोकभाषा, मराठी में लिखे इन अभंगों के द्वारा तुकाराम महाराज हमें आग्रहपूर्वक प्रेरित करते हैं कि हम भगवन्नाम गाकर अपना उत्थान करें और अपने जीवन को इस तरह जिएँ जिससे हम भी मोक्ष प्राप्त कर सकें। ये महान सिद्ध हमें आमन्त्रित करते हैं कि हम उस सूक्ष्म नीलबिन्दु की अनुभूति करें जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड समाहित है। वे हमें पुकारते हैं कि हम स्वयं उस परमानन्द को जानें जो सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है।

हमारे सिद्धयोग गुरुओं द्वारा गाए व उद्धरित किए गए इन परमानन्दमय व बोधप्रद अभंगों के अलावा, तुकाराम महाराज ने कई अन्य अभंगों की रचना की है जिनसे, हममें से अधिकांश लोग परिचित नहीं हैं। ये तुकाराम महाराज के आरम्भिक जीवन व साधना काल के बारे में हैं, जो उन्होंने तब लिखे जब वे जीवन के दारुण दुःखों के बीच रहते हुए भगवान की खोज कर रहे थे।

जैसा कि भारत के कई सन्तों के बारे में सत्य है, तुकाराम महाराज के जीवन के तथ्य ऐसी लोक-कथाओं के साथ बुने हुए हैं जो उनकी मृत्यु के बाद, इतनी सदियों में संचित हुई हैं। सौभाग्य से, तुकाराम महाराज ने स्वयं अपने कई अनुभवों का वर्णन अपने अभंगों में किया है। महाराष्ट्र राज्य ने ४, ६०० से भी अधिक अभंगों का संग्रह प्रकाशित किया है, और इनमें से कई अभंगों का अंग्रेज़ी व अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया है। मैंने मुख्य रूप से तुकाराम महाराज के शब्दों को लेकर ही उनके आरम्भिक जीवन व साधना का यह विवरण किया है।

मेरी अपनी साधना के आरम्भिक वर्षों में, तुकाराम महाराज के जीवन के सबसे तनावपूर्ण समय की कुछ कविताओं को पढ़ने से, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहने का मेरा संकल्प दृढ़ हुआ, चाहे मैं उस समय जिन भी कठिनाइयों का सामना कर रहा था। यह देखकर मुझे प्रोत्साहन मिला कि कैसे एक व्यक्ति ऐसे कठोर संघर्ष से गुज़रते हुए भी अपने भाग्य को दोष नहीं दे रहा है, बल्कि फिर भी वह भगवान की ही तरफ़ बढ़ता रहा, भगवान को ही पुकारता रहा, किसी भी सुख-सुविधा की अपेक्षा से नहीं, बल्कि सामर्थ्य व शक्ति के लिए। ऐसे समय में भी, जब लग रहा था कि भगवान नहीं सुन रहे हैं, तुकाराम महाराज कभी उनसे विमुख नहीं हुए जिनसे वे प्रार्थना कर रहे थे। और जैसा कि उनकी बाद की कविताएँ प्रमाणित करती हैं, उनके दृढ़ व निरन्तर प्रयत्नों का फल आश्चर्यजनक रूप से सुखद रहा, न केवल उनके अपने लिए अपितु आगे आने वाली कई सदियों के अन्य साधकों के लिए भी, जिसमें हम सब भी सम्मिलित हैं।

तुकाराम महाराज की युवावस्था

तुकाराम महाराज का जन्म सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में, देहू नामक एक छोटे-से गाँव में हुआ, जो भारत के महाराष्ट्र राज्य के दक्षिण भाग में है। उनके पूर्वज और माता-पिता वारकरी सम्प्रदाय के प्रति समर्पित थे। वारकरी सम्प्रदाय भक्ति परम्परा का एक धार्मिक आन्दोलन है जो तेरहवीं शताब्दी से चला आ रहा है और इसमें ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव महाराज, सन्त जनाबाई व एकनाथ महाराज और महाराष्ट्र के कई सन्त-कवि शामिल हैं।

वारकरी, भगवान विठ्ठल की उपासना करते हैं, जो सृष्टि के पालनकर्ता, भगवान विष्णु का रूप हैं; भगवान विठ्ठल को पण्ढरीनाथ या पाण्डुरंग भी कहा जाता है। वारकरी इस बोध का पालन करते हैं कि भगवान सर्वत्र हैं और हर व्यक्ति सर्वोच्च सम्मान का अधिकारी है, चाहे उसकी पद-प्रतिष्ठा कोई भी हो या वह किसी भी जाति का क्यों न हो।

अन्य कृषक समुदाय के समान, तुकाराम महाराज का परिवार भी शूद्र वर्ण से था, जो उस समय के भारत में प्रचलित चार वर्णों में सबसे निम्न माना जाता था और इसमें अधिकतर श्रमिक वर्ग आता था। तथापि तुकाराम महाराज के पिता बहुत सम्मानित व्यक्ति थे। वे इन्द्रायणी नदी के तट के निकट काफ़ी बड़े खेत के मालिक थे और व्यापार से भी उनकी अच्छी आय हो जाती थी। किशोरावस्था में, तुकाराम महाराज ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की और गाँव के अन्य बालकों से विपरीत उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया गया।

सत्रहवीं शताब्दी में, परम्परागत तौर से कम आयु में विवाह हो जाया करता था और जब तुकाराम महाराज की आयु मात्र तेरह वर्ष की थी तभी उनका विवाह रखमाबाई नामक कन्या से कर दिया गया था।

कई वर्षों तक सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहा। फिर, जब तुकाराम महाराज सत्रह वर्ष के हुए, तब जिस जीवन से वे परिचित थे, वह परिवर्तित होने लगा। उनके पिता बीमार हो गए और कुछ समय बाद ही उनका निधन हो गया। उसी दौरान तुकाराम महाराज के बड़े भाई, जिन्हें उनके पिता ने परिवार का मुखिया बनने के लिए तैयार किया था, उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। इन घटनाओं से पूरी तरह हताश होकर उनके भाई ने सांसारिक जीवन का त्याग कर दिया और घर छोड़कर, भ्रमणशील साधु हो गए।

इस कारण तुकाराम महाराज पर परिवार और व्यापार दोनों का भार एक-साथ आ गया—ऐसी भूमिकाएँ जिनके लिए वे बिल्कुल भी तैयार नहीं थे। यद्यपि सब कुछ सँभालने के लिए उन्होंने दिन-रात मेहनत की परन्तु युवा तुकाराम को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ा। जब वे थक गए और उनके साधन समाप्त हो गए, तब उनके कुछ मित्र-परिजनों ने मिलकर थोड़ा धन जुटाकर फिर से उनका काम आरम्भ करने में सहायता की। इसके तुरन्त बाद उस क्षेत्र में लगातार दो वर्ष तक सूखा पड़ा व विनाशकारी अकाल की स्थिति बन गई। न तो कोई फसल हुई और न ही पशु जीवित बचे। हज़ारों अन्य परिवारों की तरह ही तुकाराम महाराज का परिवार भी भूखा मरने लगा। उन्होंने अपनी माँ को अपने सामने दम तोड़ते देखा। वे अपने ज्येष्ठ पुत्र को भी खो बैठे। और उनकी प्रिय पत्नी ने भी भोजन के लिए तड़पते हुए अपने प्राण गँवा दिए।

इस समय तुकाराम महाराज की आयु इक्कीस वर्ष की थी। उनके सिर पर ऋण का भार था और वे भ्रम, लज्जा व दुःख से ग्रस्त थे। उनका जीवन अस्त-व्यस्त हो चुका था।

और अब तुकाराम महाराज उन भगवान की ओर मुड़े जिनकी आराधना उनके माता-पिता व पूर्वज करते आए थे।

स्वप्न में दीक्षा

एकान्त में मन की शान्ति खोजते तुकाराम महाराज नज़दीक की पहाड़ियों पर जाकर ज्ञानेश्वर महाराज, एकनाथ महाराज और वारकरी पन्थ के अन्य सन्तों के उपदेशों पर मनन करते। सदियों पूर्व हुए इन महान आत्माओं के विपरीत, तुकाराम महाराज के पास न तो कोई आध्यात्मिक सहचर था और न ही कोई गुरु थे जो उन्हें जाग्रत कर उनका मार्गदर्शन करें। इसके बावजूद, जब समय आया

तब, उनके स्वप्न में एक अद्‌भुत घटना घटित हुई। तुकाराम महाराज अपने इस स्वप्न का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

सदगुरुराये कृपा मज केली।
परि नाही घडली सेवा काही॥ १॥
सापडविले वाटे जाता गंगास्नाना।
मस्तकी तो जाणा ठेविला कर॥ २॥
राघव चैतन्य केशव चैतन्य।
सांगितली खुण माळिकेची॥ ३॥
बाबाजी आपुले सांगितले नाम।
मंत्र दिला राम कृष्ण हरी॥ ४॥
माघ शुद्ध दशमी पाहुनी गुरुवार।
केला अंगीकार तुका म्हणे॥ ५॥

जब मैं गंगा स्नान के लिए जा रहा था
तब सद्‌गुरु ने मुझ पर कृपा की।
यद्यपि मुझे कोई ज्ञान न था कि उनकी सेवा कैसे करूँ,
फिर भी उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर मुझे अपने आशीर्वाद प्रदान किए।
उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा का ज्ञान कराया—
राघव चैतन्य, केशव चैतन्य।
फिर उन्होंने मुझे खुद अपना नाम बताया—बाबा जी।
उन्होंने मुझे मन्त्र दिया, 'राम कृष्ण हरी'।
वह गुरुवार का दिन था,
माघ मास के शुक्लपक्ष की दशमी।
तुका कहता है, इस दिन मेरे गुरु ने मुझे स्वीकार किया।[१]

यह दिन जो ग्रेगोरियन कैलेन्डर के अनुसार जनवरी या फ़रवरी में आता है, सचमुच सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिन था। तुकाराम महाराज के मस्तक पर हाथ रखकर, उन्हें पवित्र मन्त्र, 'राम कृष्ण हरी' प्रदान करने जो सद्‌गुरु उनके स्वप्न में आए थे—और जिन्हें तुकाराम महाराज ने फिर कभी नहीं देखा—उन सद्‌गुरु ने तुकाराम महाराज की अन्तर-सत्ता को जाग्रत कर दिया था और उन्हें उस मार्ग पर अग्रसर कर दिया था जो उनकी नियति में लिखा था।

तुकाराम महाराज ने इस मन्त्र को वैसे ही ग्रहण किया जैसे एक डूबता हुआ व्यक्ति मिले हुए सहारे को कसकर पकड़ता है। जैसे-जैसे वे 'राम कृष्ण हरी' का पुनः-पुनः जप करते गए, श्रीगुरु की कृपा से अनुप्राणित यह मन्त्र तुकाराम महाराज को उनके अन्दर छाए घोर अन्धकार व भ्रान्ति की अवस्था से बाहर लाने लगा, जिसमें वे छटपटा रहे थे।

तुकाराम महाराज की ज़मीन पर भगवान विठ्ठल का एक प्राचीन मन्दिर था जो बहुत पहले ही खण्डहर हो चुका था। कुछ काल यह मन्त्र जपते-जपते, तुकाराम महाराज को इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करने की अन्तर-प्रेरणा हुई। तुकाराम महाराज की इस योजना का उनकी दूसरी पत्नी, जिज़ाबाई के लिए कोई महत्त्व नहीं था; वे यह मान चुकी थीं कि उनके पति का दिमाग़ी सन्तुलन ख़राब हो गया है। फिर भी तुकाराम महाराज ने उनसे धीरज रखने का आग्रह किया, तुकाराम महाराज को ऐसा महसूस हो रहा था कि उनके पास कोई अन्य उपाय नहीं है। भगवान की सेवा में इस मन्दिर का पुनर्निर्माण करने के लिए उन्हें एक तीव्र खिंचाव-सा महसूस होने लगा।

तुकाराम महाराज को जीवन का लक्ष्य मिल गया

मन्दिर में काम करते-करते, तुकाराम महाराज के मन में, वहाँ 'कीर्तन' करने का विचार आया। 'कीर्तन', सत्संग का वह प्रकार है जो महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर महाराज के समय से प्रचलित है; ज्ञानेश्वर महाराज स्वयं तेरहवीं सदी के एक प्रसिद्ध कीर्तनकार थे। कीर्तन के मूल तत्त्व होते—भगवान विठ्ठल को समर्पित अभंग गाना, जिसमें सभी प्रतिभागी ध्रुवपद को दोहराते हैं, और नामसंकीर्तन करना जिसमें भगवान के नाम को मुख्य गायक के गाने के बाद दोहराया जाता है; गाते-गाते कई बार, लोग भावविभोर होकर नृत्य करने लगते हैं। इन सत्संगों में प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्र, श्रीमद्भागवतम् की प्रेरक कथाएँ भी सम्मिलित हो सकती हैं; इस शास्त्र में वेदों की सिखावनियों को कहानियों के माध्यम से समझाया गया है।

तुकाराम महाराज ने अब तक जो कविताएँ लिखी थीं, वे कीर्तन के लिए उन्हें उपयुक्त नहीं लगीं। इसलिए वे ज्ञानेश्वर महाराज और नामदेव महाराज के अभंगों व सन्त कबीर के भजनों को कण्ठस्थ करने लगे।

मन्दिर के जीर्णोद्धार व सफ़ाई का कार्य पूरा होने के बाद, तुकाराम महाराज वहाँ कीर्तन आयोजित करने लगे जिसमें वे उन अभंगों और भजनों को गाते जो उन्होंने याद किए होते और वे अपने श्रीगुरु द्वारा दिए मन्त्र का संकीर्तन करते। धीरे-धीरे गाँव के लोग वहाँ एकत्रित होने लगे।

तुकाराम महाराज के अन्दर से अभंग स्वतः ही स्फुरित होने लगे

इसके कुछ ही समय बाद, तुकाराम महाराज को एक और स्वप्न आया, जिसमें भगवान विठ्ठल और उनके साथ नामदेव महाराज ने उन्हें दर्शन दिए। नामदेव महाराज, तुकाराम महाराज से तीन शताब्दी पूर्व हुए एक महान मराठी कीर्तनकार थे। इस स्वप्न में, नामदेव महाराज ने कहा कि उन्होंने अपने जीवन में भगवान विठ्ठल की स्तुति में बहुत बड़ी संख्या में भजन लिखने का प्रण लिया था—ऐसी संख्या जिसे पूरा कर पाना उनके लिए असम्भव था। अब, वे भगवान के साथ तुकाराम महाराज से यह कहने आए थे कि तुकाराम महाराज उनका प्रण पूरा करने में उनकी सहायता करें।

इस स्वप्न के बाद, तुकाराम महाराज को अनुभव होने लगा कि एक-के-बाद-एक अभंग उनके अन्दर से स्वतः स्फुरित हो रहे हैं। उन्हें ऐसा नहीं लगता कि वे खुद इन गीतों की रचना कर रहे हैं बल्कि यह महसूस होता कि भगवान स्वयं उनके माध्यम से गा रहे हैं। तुकाराम महाराज में अब यह साहस आ गया कि वे अन्तर-प्रेरणा से उभरे इन अभंगों को अपने कीर्तनों में गा सकें। अब, जिस मन्दिर का उन्होंने पुनर्निर्माण किया था, वहाँ अधिकाधिक संख्या में लोग आने लगे। यद्यपि वे बार-बार इस बात पर ज़ोर देकर कहते थे कि ये गीत, उनकी रचनाएँ नहीं हैं, और वे केवल एक वाहक हैं, परन्तु कीर्तन में सम्मिलित होने वाले गाँववासी यही समझते थे कि यह तो तुकाराम महाराज की विनम्रता है जो वे ऐसा कह रहे हैं। लोग तुकाराम महाराज को अपने बीच रहने वाले सन्त मानने लगे।

इस बीच तुकाराम महाराज को यह पीड़ा अधिकाधिक सताने लगी कि उन्हें ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं हुई है, और इसी कारण भगवान विठ्ठल के प्रति उनके भजन, अधिकांशतः व्यथाभरी पुकार से भरे हुए हैं।

जन मानवले वरी बाह्यात्कारी। तैसा मी अंतरीं नाही जालों॥ १ ॥
म्हणउनी पंढरीनाथा वाटतसें चिंता। प्रगट बोलतां लाज वाटे॥ २ ॥
संतां ब्रह्मरूप जाले अवघें जन। ते माझे अवगुण न देखती॥ ३ ॥
तुका म्हणे मी तों आपणासी ठावा। आहे बरा देवा जैसा तैसा॥ ४ ॥

लोग मुझे आदर और सम्मान की दृष्टी से देखते हैं,
वे नहीं जानते कि अन्दर से मैं कैसा हूँ।
हे पण्ढरीनाथ! इसलिए मुझे चिन्ता होती है,
यह प्रकट करते हुए भी लज्जा महसूस होती है।

ये साधुजन सभी को ब्रह्म का ही रूप मानते हैं
इसलिए वे मेरे अवगुण नहीं देखते।
तुका कहता है, हे भगवान, केवल तुम ही जानते हो
कि मैं वैसा ही हूँ जैसा मैं हमेशा से था।[२]

ऐसा बहुत समय तक चलता रहा, तुकाराम महाराज स्वयं को अपूर्ण और अपरिपक्व समझते रहे, वे स्वयं को अवगुणों और आकांक्षाओं से भरे और ईश्वर से दूर समझते रहे, तथापि जो लोग उन्हें सुनते, वे महसूस करते थे कि गाते समय तुकाराम महाराज के अन्दर से दिव्य शक्ति प्रवाहित हो रही है। फिर तुकाराम महाराज व्याकुल हो उठते और भगवान विठ्ठल से याचना करने लगते कि भगवान उन्हें अपनी उपस्थिति का अनुभव प्रदान करें।

एक निर्णायक मोड़

तुकाराम महाराज भगवान की सेवा करने के लिए कीर्तन करते रहे—भगवान विठ्ठल का नाम गाने के लिए लोगों का मार्गदर्शन करते रहे—और वे निरन्तर भगवान का ही चिन्तन करते रहे। इस तरह तुकाराम महाराज अपने मन का शुद्धिकरण कर रहे थे।

समय के साथ, उन्हें यह एहसास होने लगा कि भले ही उन्हें लग रहा है कि भगवान विठ्ठल दर्शन नहीं दे रहे हैं, किन्तु भगवान की उपस्थिति के अनुभव के लिए उन्होंने खुद ही अपने द्वार बन्द कर रखे हैं। लज्जा और अयोग्यता की उनकी भावनाओं और भगवान विठ्ठल को उनके सम्मुख किस रूप में दर्शन देने चाहिए, इन अपेक्षाओं ने तुकाराम महाराज की इस समझ पर पर्दा डाल रखा था कि भगवान तो हमेशा से उनके साथ हैं। यद्यपि उन्हें भगवान विठ्ठल के दृष्टान्त नहीं हुए, परन्तु अब वे समझ गए थे कि निश्चित ही वे भगवान ही रहे होंगे जिन्होंने बाबा जी चैतन्य को तुकाराम महाराज के स्वप्न में वह दीक्षा प्रदान करने भेजा था। वे भी भगवान ही रहे होंगे जिन्होंने तुकाराम महाराज को मन्दिर का पुनर्निर्माण करने और वहाँ कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया था और जिन्होंने नामदेव महाराज के साथ स्वप्न में आकर तुकाराम महाराज को अपने स्वयं के अभंग गाने के लिए प्रोत्साहित किया था। और वास्तव में, वे *भगवान ही थे* जो तुकाराम महाराज के माध्यम से गा रहे थे और सभी सुनने वालों का उत्थान कर रहे थे।

आळवीन करुणावचनीं। आणीक गोड न लगे मनीं।
निद्रा जागृती आणि स्वप्नीं। धरिलें ध्यानीं मनीं रूप॥ ५॥
आतां भेट न भेटतां आहे। किंवा नाहीं ऐसें विचारूनि पाहें।
लागला झरा अखंड आहे। तुका म्हणे साहे केलें अंतरीं॥ ६॥

निद्रा, जागृति और स्वप्न में,
मेरा मन आप ही के स्वरूप का ध्यान करता है।
अब आपसे कभी मेरी भेंट हो या न हो,
मैं अपने मन में, आपसे मिलता हूँ।
आपके स्मरण का यह अखण्ड निर्झर
मेरे अन्तर में दिन-रात बहता रहता है।
तुका कहता है, मुझे अपने अन्तर में महान सहायता मिल गई है।[३]

अधिकारियों के कारण परेशानियाँ

अपने जीवन में भगवान के महत्त्वपूर्ण स्थान का अभिज्ञान होने के बाद, तुकाराम महाराज अधिक आत्मविश्वास के साथ भगवान विठ्ठल की सेवा करने लगे। उनके कीर्तन सुनने के लिए अधिकाधिक लोग आकृष्ट होने लगे, लोग दूर-दूर से उनके अभंग सुनने आते और उनके प्रेरणादायी सान्निध्य में भगवान के नाम का संकीर्तन करते। उस समय जब महाराष्ट्र की आम जनता ग़रीबी और बीमारी, कठोर जाति-व्यवस्था और आर्थिक शोषण के बोझ तले दबी हुई थी, तब तुकाराम महाराज हज़ारों लोगों में प्रेरणादायक आशा व साहस जगा रहे थे।

कास घालोनि बळकट। झालों कळिकाळावरी नीट॥
केली पायवाट। भवसिंधूवरूनि॥
या रे या रे लहान थोर। याति भलते नारी नर॥
करावा विचार। न लगे चिंता कोणासी॥
कामी गुंतले रिकामे। जपी तपी येथें जमे॥
लाविले दमामे। मुक्ता आणि मुमुक्षा॥
एकंदर शिक्का। पाठविला येही लोका॥
आलों म्हणे तुका। मी नामाचा धारक॥

मैं कमर कसकर
अपनी नियति को अंगीकार करने के लिए तैयार हूँ।
मैंने तुम्हारे लिए भवसागर से पार जाने का मार्ग बनाया है।
आओ-आओ, छोटे-बड़े सभी जन आओ,
सभी नर-नारी आओ,
संसारी हो या संन्यासी, आलसी हो या मेहनती,

सब चिन्ताएँ छोड़कर, सभी आओ।
सुनो! ढोल-नगाड़े तुम्हें आमन्त्रित कर रहे हैं
तुम मुक्त हो या फिर मुमुक्षु।
मेरे भगवान ने अपनी मुहर लगाकर मुझे इस लोक में भेजा है।
तुका कहता है, इसीलिए मैं, उनका नामधारक आया हूँ।[४]

देहू गाँव के रूढ़िवादी ब्राह्मण, तुकाराम महाराज की बढ़ती लोकप्रियता को अपने लिए एक ख़तरे की तरह देखने लगे। उस समय, केवल ब्राह्मण जाति में पैदा हुए लोग ही आध्यात्मिक उपदेश देने के लिए अधिकृत थे और ऐसा वे केवल संस्कृत भाषा में किया करते थे जो वेदों की भाषा है। एक निम्न जाति का शूद्र हज़ारों सामान्य गाँववासियों को स्थानीय भाषा मराठी में अपने भगवद्-भजनों द्वारा प्रोत्साहित करे, ऐसे कृत्य को धर्मद्रोह और साथ ही ब्राह्मण-सत्ता के खिलाफ़ एक गम्भीर ख़तरे के रूप में देखा गया।

उसी दौरान तुकाराम महाराज के जीवन में एक चमत्कारिक घटना घटित हुई जिसके बारे में वे स्वयं अपने अभंगों में लिखते हैं। ब्राह्मणों ने माँग की कि तुकाराम महाराज अपनी कविताओं को इन्द्रायणी नदी में फेंककर स्वयं नष्ट करें। तुकाराम महाराज ने उनके इस आदेश का पालन किया किन्तु जब वे अपने हाथ से लिखी इन रचनाओं को पानी में डूबता हुआ देख रहे थे तब उन्होंने भगवान विठ्ठल से उन रचनाओं की रक्षा करने की प्रार्थना की। तुकाराम महाराज ने दृढ़निश्चय किया कि वे अन्न त्यागकर नदीतट पर बैठे प्रार्थना करते रहेंगे, इस आशा में कि यदि वे काव्य-रचनाएँ सच्ची हैं तो भगवान उन्हें ज़रूर बचा लेंगे।

तेरह दिन बाद, गाँव के लोगों ने देखा कि तुकाराम महाराज की रचनाएँ इन्द्रायणी नदी की सतह पर तैर रही हैं—ज्यों-की-त्यों और पूरी तरह सुरक्षित।

पूर्णत्व

इस चमत्कारी घटना के बाद, तुकाराम महाराज सम्पूर्ण भारत में उनसे पहले हुए महान वारकरी सन्तों की परम्परा के एक सच्चे सन्त के रूप में प्रसिद्ध हो गए। बड़ी संख्या में लोग दूर-दूर से उनके कीर्तन में भाग लेने के लिए आने लगे और जिन ब्राह्मणों ने उन्हें सताया था, उनमें से कुछ अब तुकाराम महाराज के शिष्य बन गए।

तुकाराम महाराज स्वयं अपने कुछ अभंगों में इस घटना का वर्णन करते हैं। तथापि, उनके अन्य कई अभंग हैं, जो बाबा जी व गुरुमाई जी ने हमारे लिए गाए हैं। ये अभंग हमें और भी बड़े चमत्कार के

बारे बताते हैं : रूपान्तरण का चमत्कार जो भगवान विठ्ठल की सेवा करते समय तुकाराम महाराज के अन्तर में घटित हो रहा था। तुकाराम महाराज की लम्बी यात्रा अब पूरी हो चुकी थी, उनकी ललक पूर्ण हो गई थी। वे भगवान के साथ अपने एकत्व की अनुभूति तक आ पहुँचे थे।

एक अभंग है जिसे बाबा मुक्तानन्द अकसर अपने प्रवचनों के दौरान गाया करते थे और जिसे गुरुमाई जी ने संगीतबद्ध कर रिकॉर्ड किया है, इस अभंग में तुकाराम महाराज उद्घोषित करते हैं :

देव माझा मी देवाचा। हीच माझी सत्य वाचा॥ १ ॥
देहीं देवाचे देऊळ। आंत बाहेर निर्मळ॥ २ ॥
देव पहाया मी गेलों। तेथें देवचि होऊनी ठेलों॥ ३ ॥
तुका म्हणे धन्य झालों। आज विठ्ठला भेटलों॥ ४ ॥

भगवान मेरे हैं और मैं भगवान का हूँ।
मैं सत्य कह रहा हूँ,
भगवान मेरे हैं।

मेरी देह देवालय है,
अन्दर-बाहर से पूरी तरह निर्मल।

मैं भगवान को खोजने गया
और मैं स्वयं भगवान बन गया।

तुका कहता है, मैं धन्य हो गया।
आज भगवान विठ्ठल से मेरी भेंट हो गई।[५]

---

[१] अंग्रेज़ी भाषान्तर © एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®।

[२] पूर्वोक्त

[३] पूर्वोक्त

[४] पूर्वोक्त

[५] अंग्रेज़ी भाषान्तर © एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®।

©२०२१ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।